देशद्रोह कानून : पक्ष और विपक्ष

हाल ही में नागरिकता संशोधन विधेयक के परिप्रेक्ष्य में देश के अनेक भागों में सरकार के विरूद्ध आंदोलन हुए हैं। इन आंदोलनकारियों में से कुछ पर सरकार ने भारतीय दंड संहिता की धारा 124(ए) के तहत देशद्रोह का आरोप लगाते हुए उन्हें गिरफ्तार किया है। पिछले महीने ही कर्नाटक के एक स्कूल के प्रिंसिपल और अभिभावक पर स्कूल में सीएए के विरूद्ध भड़काने वाले नाटक का प्रदर्शन करने के लिए देशद्रोह का आरोप लगाते हुए उन्हें गिरफ्तार किया गया था।

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के डेटा के अनुसार दिसंबर, 2019 में सीएए के पारित होने से लेकर अब तक 194 लोगों पर देशद्रोह कानून के अंतर्गत मुकदमा दायर किया गया है। डेटा से यह भी पता चलता है कि इस प्रकार के अभियोगों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। परन्तु वास्तव में 2014 से लेकर अभी तक केवल 4 मामलों में ही अपराध को सिद्ध किया जा सका है। इस प्रकार के कानून से जुड़े कुछ प्रश्न हर आम नागरिक के मन-मस्तिष्क को झकझोर रहे हैं।

(1) देशद्रोह कानून औपनिवेशिक युग की देन है। इसे अब तक निरस्त क्यों नहीं किया गया ?

देशद्रोह कानून को इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के काल में बनाया गया था। भारत पर अपने शासन के दौरान उन्हें वहाबी विद्रोह की आशंका थी। इसे हमारे स्वतंत्रता सेनानियों के विरूद्ध भी इस्तेमाल में लाया गया था। महात्मा गांधी और तिलक, दोनों पर ही इस कानून के तहत मुकदमा चलाकर उन्हें दंड दिया गया था।

स्वतंत्र भारत की सभी सरकारों ने अपने-अपने समय में इसे निरस्त करने का वायदा किया। परन्तु किसी ने इसे अमली जामा नहीं पहनाया। इसका कारण था कि सरकार के प्रति एक सीमा तक असंतोष को बर्दाश्त किया जा सकता है। परन्तु उसके आगे यह खतरनाक हो जाता है। इसे नियंत्रित करने के लिए सरकार के पास कोई साधन तो होने चाहिए। यह नियंत्रण सीधे प्रशासकों द्वारा न होकर स्थानीय पुलिस द्वारा किया जाता है। पहले के पुलिसकर्मी ज्यादा स्वतंत्र थे, परन्तु समय के साथ पुलिस की स्वतंत्रता के साथ भी गंभीर रूप से समझौता किया गया है। कोई भी स्थानीय नेता किसी पुलिसकर्मी को मामला दर्ज करने के लिए धमका सकता है।

मामला दर्ज होने के बाद मीडिया, सोशल मीडिया आदि में अपना रंग जमाने लगता है। अदालत से अभियोग सिद्ध हो या न हो, परन्तु उसकी पूरी कार्यवाही में अभियोगी की हालत वैसे ही पस्त हो जाती है।

दूसरे पक्ष का मानना है कि यह संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 की रक्षा करता है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक राज्य देशद्रोह संबंधी मामलों की सत्यता को जांचने के लिए एक सर्च समिति नियुक्त करे। इसमें न्यायपालिका का उत्तरदायित्व जरूर बढ़ता है, परन्तु इस कानून के विस्तार का प्रश्न नहीं उठता।

एक पक्ष का कहना यह भी है कि अति सख्त कानून को बनाने के बाद उसके दुरूपयोग की भी संभावना रहती है। वर्तमान सरकार इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सरकार के विरूद्ध असंतोष दिखाने वालों के विरूद्ध इस्तेमाल में ला रही है।

यह कानून 100 वर्ष पुराना है, और अनुभव यह बताते हैं कि यह निरर्थक है।

(2) क्या कानून को न्यायपालिका निरस्त कर सकती है या संसद से ही बदलाव की पहल होगी ?

ऐसा लगता है कि इस कानून को खत्म करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति कभी नहीं दिखाई देगी। शायद न्यायपालिका को ही दृढ़ कदम उठाते हुए अपने पूर्व निर्णयों के आधार पर वर्तमान में यह सिद्ध करना होगा कि समय के साथ पुराने फिल्टर काम नहीं करते। दूसरे शब्दों में कहें, तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य का वास्ता देते हुए, पांच से अधिक की खंडपीठ को इस पर विचार करके इसे असंवैधानिक घोषित करना होगा।

दूसरे पक्ष को देखें तो सर्वप्रथम, न्यायपालिका ने अधिकांशतः कार्यकारिणी का समर्थन किया है। दूसरे, संसद ने अगर किसी कानून के दुरूपयोग या निरर्थकता के साक्ष्य देखे हैं, जैसे पोटा (आतंकवाद निरोधक अधिनियम, 2002), तो स्वयं ही उन्हें निरस्त कर दिया है।

दोनों पक्षों के दलीलें कुछ हद तक उचित दिखाई देती हैं। कुल-मिलाकर इस कानून के बने रहने या निरस्त होने में एक सक्रिय और जागरुक न्यायपालिका की बड़ी भूमिका है।

'द हिन्दू' में प्रकाशित लेख पर आधारित। 6 मार्च, 2020